**Sanskritik aur Samajik Anusandhan**
www.shodhjournal.com
ISSN: 2582-5852
Received: 15-07-2021, Accepted: 30-07-2021, Published: 16-08-2021
Volume 2, Issue 2, 2021, Page No. 14-17

# महादेवी वर्मा के गद्य में नारी की स्थितिः शक्ति

**डा. भावना पाण्डेय**
हिन्दी एवं भाषा विज्ञान विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश, भारत

**सारांश**

नारी जाति की एक विशेष शक्ति, एक विशेष गुण की ओर लक्ष्य करते हुए महादेवी लिखती हैं कि ''नारी में परिस्थितियों के अनुसार अपने बाह्य जीवन को ढाल लेने की जितनी सहज प्रवृत्ति है, अपने स्वभावगत गुण न छोड़ने की आंतरिक प्रेरणा उससे कम नहीं– इसी से भारतीय नारी भारतीय पुरुष से अधिक सर्तकता के साथ अपनी विषेशताओं की रक्षा कर सकी है, पुरुश के समान अपनी व्यथा भूलने के लिए वह कादम्बिनी नहीं माँगती, उल्लास के स्पंदन के लिए लालसा का ताण्डव नहीं चाहती क्योंकि दुःख को वह जीवन की शक्ति–परीक्षा के रूप में ग्रहण कर सकती है और सुख को कर्तव्य में प्राप्त कर लेने की क्षमता रखती है। ऐसी कोई साधना नहीं जिसे वह अपने साध्य तक पहुँचने के लिए सहज भाव से स्वीकार नहीं करती रही। हमारी राष्ट्रीय जागृति इस प्रमाणित कर चुकी है कि अवसर मिलने पर गृह के कोने की दुर्बल बन्दिनी स्वच्छ वातावरण में बल प्राप्त कर पुरुषों से शक्ति में कम नहीं।

**मूल शब्दः** स्वभावगत, राष्ट्रीय जागृति, बन्दिनी, पौरुषेय प्रवृत्ति, अंधानुकरण, आत्मसंघर्ष

## प्रस्तावना

### हमारी श्रृंखला की कड़ियाँ

इसमें सन् 1931 से 1937 के बीच के लगभग 11 निबंध संकलित हैं। इनमें से अधिकांश 'चाँद' के संपादन के समय अग्रलेख के रूप में लिखे गये थे। इसमें नारी जीवन के विविध पक्षों को विस्तृत कैनवास तैयार किया गया है।

इसके पहले भाग में नारी के अबला और सबला दोनों रूपों का उल्लेख करते हुए महादेवी जी ने इस निबंध में नारी को एक व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जिसकी महत्वपूर्ण भूमिका समाज के निर्माण में रही है। मैत्रेयी, गोपा, यशोधरा, सीता आदि का उदाहरण देते हुए महादेवी जी ने स्त्री की उस शक्ति का आह्वान किया है जिसके कारण वैदिक युग में स्त्री को आदरणीय स्थान प्राप्त था किंतु कालांतर में पौरुषेय प्रवृत्ति के अंधानुकरण या अनुसरण के कारण उसके स्तर में आये बदलाव को उन्होंने संकेतों में बताने में सफलता अर्जित की है।

वे मानती हैं कि स्त्री का ''विकास ऐसा होना उचित है जिसके साधारण सामाजिक सिद्धांतों की रक्षा भी हो सके और समयानुकूल परिवर्तन भी। पुरुश के समान स्त्री भी कुटुंब, समाज, नगर तथा राष्ट्र की विशिष्ट सदस्य है तथा उसकी प्रत्येक क्रिया का प्रतिफल सबके विकास में बाधा भी डाल सकता है और उनके मार्ग को प्रशस्त भी कर सकता है।..... महादेवी जी के अनुसार स्त्री के व्यक्तित्व में कोमलता और सहानुभूति के साथ साहस तथा विवेक का ऐसा सामंजस्य होना आवश्यक है जिससे हृदय के सहज स्नेह की अजस्र वर्षा करते हुए भी वह किसी अन्याय को प्रश्रय न देकर उसके प्रतिकार में तत्पर रह सके।''

### युद्ध और नारी

युद्ध की बर्बरता और स्त्री की प्रवृत्ति को विषय के रूप में लेकर लिख गया महादेवी जी का यह निबंध कई बातों को सामने लाता हुआ युद्ध से शांति की बात प्रस्तुत करता है। स्त्री की मनोवृत्ति युद्ध के अनुकूल नहीं है फिर भी पुरुष ने युद्ध में उसका वैदिककाल से ही सहयोग लिया है। महादेवी जी कहती है कि पुरुश का जीवन संघर्ष से प्रारंभ होता है और स्त्री का आत्मसंघर्ष से प्रारंभ होता है। परंतु स्त्री ने अपनी सहज बुद्धि के साथ पुरुष से अपना संघर्ष नहीं होने दिया। वे मानती हैं कि यदि होने दिया होता तो आज मानव–जाति की दूसरी ही कहानी होती। वे दोनों के युद्ध व संघर्ष के तरीकों की ओर संकेत करती हुई लिखती हैं कि ''पुरुष को यदि ऐसे वृक्ष की उपमा दी जाए, जो अपने चारों ओर के छोटे–छोटे पौधों का जीवन–रस चूस–चूस कर आकाष की ओर बढ़ता जाता है तो स्त्री को ऐसी लता कहना होगा जो, पृथ्वी से बहुत थोड़ा–सा स्थान लेकर, अपनी सघनता में बहुत–से अंकुरों को पनपाती हुई उस वृक्ष की विषलता को चारों ओर से ढँक लेती है। वृक्ष की शाखा–प्रशाखाओं को काटकर भी हम उसे एकांकी जीवत रख सकते हैं, परंतु लता की, असंख्य उलझी–उलझी उपषाखाएँ नष्ट हो जाना ही उसकी मृत्यु है। स्त्री और पुरुष के इसी स्वभाव–जनित भेद ने उन्हें एक–दूसरे के निकट परिचय प्राप्त करने योग्य बना दिया। स्त्री का जो आत्म–निवेदन पुरुष को पराभूत करने के लिए हुआ था, वह संतान के आगमन से और भी दृढ़ हो गया।''

वे आगे बताती हैं कि स्त्री और पुरुष दोनों के परिवारवाद की ओर प्रवृत्त होने से मानव जाति अपने सुख की परिधि को धीरे–धीरे बढ़ाने लगी। युद्धों का सर्वथा अंत तो नहीं हुआ, परंतु अब व्यक्ति अपने गृह की रक्षा के लिए तत्पर हुआ और जाति एक विशेष गृह–समूह की रक्षा के लिए मरने–मारने लगी। फिर भी स्त्री में कभी वह रक्तलोलुपता नहीं देखी गई। स्वभाव जनित भिन्नता के कारण और शारीरिक दृष्टि से भी स्त्री युद्ध के अनुपयुक्त नहीं रही, वरन् युद्ध उसके विकास में बाधक भी रहा है; ऐसा मानते हुए महादेवी ने युद्धकाल में स्त्री के संपूर्ण होने पर संषय व्यक्त किया है। किंतु वे यह भी मानती हैं कि जब पुरुष के सम्मुख स्त्री ने यह तर्क रखा कि तुम्हारी युद्ध विमुखता स्वभावजनित नहीं बल्कि दुर्बलता के कारण है और इसी से यह लज्जा का कारक है गर्व का नही तब ''अपने स्वभाव की यह नवीन व्याख्या सुनकर मानो नारी ने अपने–आप को एक नये दर्पण में देखा, जिसने उसे कुत्सित और दुर्बल प्रमाणित कर दिया। उसका रोम–रोम विधाता से प्रतिशोध लेने के लिए जल उठा।

## नारीत्व का अभिशाप

भारतीय नारी के नारीत्व और उसके त्याग, संघर्ष और बलिदान पर प्रकाश डालते हुए महादेवी जी ने इस निबंध में नारीत्व के दशा–दुर्दशा आदि के महत्वपूर्ण तथ्यों को उजागर किया है। वे मानती हैं कि नारी का उत्कर्श और अपकर्ष दोनों ही उसके आँसुओं से लिखा गया है। पुरुश सदैव नारी के बलिदान को नारी की दुर्बलता मानता आया है। इस निबंध में सीता की पवित्रता की वेदना का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए महादेवी जी ने सामाजिक मूल्यों पर प्रश्न उठाये हैं। आगे नारीत्व के अभिशाप के रूप में उसकी दुर्बलता का का संकेत दिया है जिसे कोमलता के नाम से जाना जाता है। वे कहती हैं ''नारी के स्वभाव में कोमलता के आवरण में जो दुर्बलता छिप गई है वही उसके शरीर में सुकुमारता बन गई है। यह सत्य नहीं है कि वह इस दुर्बलता पर विजय नहीं पा सकती, पर यह निर्विवाद सत्य है कि वह अनादि काल से उसे अपना अलंकार समझती रहने के कारण त्यागने पर उद्यत ही नहीं होती। उसके विचार में इसके बिना नारीत्व अधूरा है।''

हिन्दू समाज में नारी की स्थिति पर विचार प्रस्तुत करते हुए महादेवी जी लिखती हैं कि ''अपने पितृ गृह में उसे वैसा ही स्थान मिलता है जैसा कि दुकान में उस वस्तु को प्राप्त होता है जिसके रखने और बेचने दोनों में ही दुकानदार को हानि की संभावना रहती है। जिस घर में उसके जीवन को ढालकर बनाना पड़ता है, उसके चरित्र को एक विशेष रूपरेखा धारण करनी पड़ती है, जिस पर वह अपने शैशव का सारा स्नेह ढुलकाकर भी तृप्त नहीं होती उसी घर में वह भिक्षुक के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। दुःख के समय अपने आहत हृदय और शिथिल शरीर को लेकर उसके स्नेहाँचल में नहीं छिपा सकती और आपत्ति के समय सक मुट्ठी अन्न की भी उस घर से आशा नहीं रख सकती। ऐसी ही है उसकी अभागी जन्मभूमि, जो जीवित रहने के अतिरिक्त और कोई अधिकार नहीं देती। पतिगृह, जहाँ इस उपेक्षित प्राणी को जीवन का शेष भाग व्यतीत करना पड़ता है, अधिकार में उससे कुछ अधिक परंतु सहानुभूति में उससे बहुत कम है इसमें संदेह नहीं। यहाँ उसकी स्थिति पल भर भी आषंका से रहित नहीं।

यदि वह विद्वान पति की इच्छानुकूल विदुषी नहीं है तो उसका स्थान दूसरी को दिया जा सकता है, यदि वह सौंदर्योपासक पति की कल्पना के अनुरूप अप्सरा नहीं है तो उसे अपना स्थान रिक्त कर देने का आदेश दिया जा सकता है, यदि वह पति कामना का विचार करके संतान या पुत्रों की सेना को जन्म नहीं दे सकती, यदि व रुग्ण है या दोषों का नितांत अभाव होने पर भी पति की अप्रसन्नता की दोशी है तो भी से घर में दासत्व स्वीकार करना पड़ेगा।''

महादेवी जी कहती हैं कि यदि अपनी इस स्थिति के लिए यदि स्त्री 'क्यों' का प्रश्न करती है तो उसके इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए न तो गृहस्वामी, न समाज और न ही धर्म बाध्य है। वह सभी के द्वारा दोषी मान ली जाती है। वैधव्य हो महादेवी स्त्री के लिए दूसरा अभिशाप मानती हैं क्योंकि ''यदि दुर्भाग्य से स्त्री के मस्तक का सिंदूर धुल गया तब तो उसके लिए संसार ही नष्ट हो गया। यह ऐसा अपराध है जिसके कारण उसे मृत्युदंड से भी भीशण दंड भोगते हुए तिल–तिल घुल कर जीवन के शेष, युग बन जाने वाले क्षण व्यतीत करने होते हैं।''

## आधुनिक नारी

यह निबंध भी दो भागों में लिखा गया है जिसके प्रथम भाग में आधुनिक स्त्री, उसकी मानसिकता और संस्कारजन्य परिस्थितियों का विश्लेषण किया है। आधुनिक स्त्री की अंधाधुंध दौड़ के बारे में वे लिखती हैं कि ''जिस कार्य को वह बहुत सफलतापूर्वक कर सकी है वह प्रकृति से विकृति की ओर जाना मात्र था। वह अपनी प्रकृति को वस्त्रों के समान जीवन का बाह्य आच्छादन मात्र बनाना चाहती है, जिसे इच्छा और आवश्यकता के अनुसार जब चाहे पहना या उतारा जा सके। बाहर के संघर्षमय जीवन में जिस पुरुष को नीचा दिखाने के लिए वह सभी क्षेत्रों में कठिन–से–कठिन परिश्रम करेंगी, जीवन–यापन के लिए आवश्यक प्रत्येक वस्तु को अपने स्वेदकणों से तौल कर स्वीकार करेगी, उसी पुरुश में नारी के प्रति जिज्ञासा जाग्रत करने के लिए वह अपने सौंदर्य और अंगसौष्ठव के रक्षार्थ असाध्य–से–असाध्य कार्य करने के लिए भी प्रस्तुत है। आज उसे अपने रूप, अपने शरीर और अपने आकर्षण का जितना ध्यान है उसे देखते हुए कोई भी विचारशील, स्त्री को स्वंतत्र न कह सकेगा।''

वे नारी शक्ति का इस ओर ध्यानाकर्षित करना चाहती हैं कि आधुनिक नारी पुरुश के और अपने संबंध को रहस्यमयी जिज्ञासा से आरंभ करके उसे वहीं स्थिर रखना चाहती है जो संभवतः उसे किसी स्थायी आदान–प्रदान का अधिकार नहीं देता वहीं प्राचीनकाल की नारी ने पुरुश को जिस स्तर तक परिष्कृत किया उसके कारण पुरुष ने उसे मनोविनोद के सुंदर साधनों की श्रेणी से उठाकर गरिमामयी विधात्री के ऊँचे आसन पर प्रतिश्ठित कर दिया था। वे कहती हैं कि ''आज पुरुष के निकट स्त्री प्रसाधित श्रृंगारित स्त्रीत्व मात्र लेकर खड़ी है, यह वह मानना नहीं चाहेगी परंतु वास्तव में यही सत्य है।''

आधुनिक पाश्चात्य नारी के भारतीय आधुनिक नारी द्वारा किये जाने वाले सौंदर्यानुकरण के संबंध में महादेवी जी लिखती हैं कि ''पश्चिम में स्त्रियों ने बहुत कुछ प्राप्त कर लिया, परंतु सब कुछ पाकर भी उनके भीतर की चिरन्तन नारी नहीं बदल सकी। पुरुष उसके नारीत्व की उपेक्षा करे, यह उसे भी स्वीकार न हुआ, अतः वह अधिक मनोयोग से अपने बाह्य आकर्शण को बढ़ाने और स्थायी रखने का प्रयत्न करने लगी। पश्चिम में स्त्री की स्थिति में जो विशेषता है उसके मूल में पुरुष के प्रति उनकी स्पर्धा के साथ ही उसे आकर्षित करने की प्रवृत्ति भी कार्य करती है।'' महादेवी आधुनिक भारतीय नारी की तुलना पष्चिम की आधुनिक नारी से करते हुए दोनों में असंतोष और उसके निराकरण में साम्य होना स्वीकार करती हैं।

निबंध के दूसरे भाग में वे आधुनिक प्रगतिशील नारी का श्रेणी विभाजन करते हुए उनकी विशेषताओं पर प्रकाश डालती हैं। राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने वाली और उसे प्रगतिशील बनाने वाली आधुनिक नारियों का समाज और देश हित में दिए गए प्रदाय का वर्णन उन्होंने किया है तो भविष्य के समाज में नारी की स्थिति की कल्पना भी प्रस्तुत की है वे लिखती हैं ''भविष्य में भारतीय समाज की क्या रूपरेखा हो, उसमें नारी की कैसी स्थिति हो, उसके अधिकारों की क्या सीमा हो आदि समस्याओं का समाधान आज की जाग्रत और शिक्षित नारी पर निर्भर है। यदि वह अपनी दुरावस्था के कारणों को स्मरण रख सके और पुरुष की स्वार्थपरता को विस्मरण कर सके तो भावी समाज का स्वप्न सुंदर और सत्य हो सकता है, परंतु यदि वह अपने विरोध को ही चरम लक्ष्य मान ले और पुरुष से समझौते के प्रश्न को ही पराजय का पर्याय समझ ले तो जीवन की व्यवस्था अनिश्चित और विकास का क्रम शिथिल होता जायेगा। क्रांति की अग्रदूती और स्वतंत्रता की ध्वजा–धारिणी नारी का कार्य जीवन के स्वस्थ निर्माण में शेष होगा, केवल ध्वंस में नहीं।''

## घर और बाहर

युगों से नारी ने अपने घर और गृहस्थी को ही अपना कार्यक्षेत्र बना रखा है। जिसकी सुख–शांति उसे जीवन की चरम सफलता थी और उस तक पहुँचने के प्रयत्न में मिट जाना उसके लिए स्तुत्य। बस इसी एक कर्तव्य के कारण स्त्री की स्वतंत्रता सीमित थी ऐसा मानते हुए महादेवी जी ने इस निबंध में स्त्री की स्वतंत्रता के विस्तार को रेखांकित करने का प्रयास किया है। वर्तमान में स्त्री का न तो कठोर रेखाओं में बँधा हुआ कोई एक रूप है और न एक कर्तव्य, अतः वह अपना लक्ष्य स्थिर करने के लिए पहले की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र मानी जा सकती है और इसीलिए स्त्री और पुरुष के बीच सहयोग तभी सुगम हो सकेगा जब स्त्री में भी जीवन के अनेक रूपों और परिस्थितियों के साथ चलने और उसके अनुरूप परिवर्तनों को हृदयंगम करने की शक्ति उत्पन्न हो

जाए क्योंकि स्त्री अब पत्नी या रमणी नहीं बल्कि घर के बाहर भी समाज का एक विशेष अंग तथा महत्वपूर्ण नागरिक है इसीलिए उसका कर्तव्य भी अनेकाकार हो गया है जिसके पालने में कभी–कभी ऐसे संघर्ष आ पड़ते हैं जिसमें किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाना पड़ता है।

## हिन्दु स्त्री का पत्नीत्व

प्रस्तुत निबंध में विकास और विकृति के परिप्रेक्ष्य में भारतीय स्त्री की सामाजिक स्थित को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है। महादेवी जी की दृष्टि में सदियों से स्त्री पर वज्रपात कर स्त्रीत्व को ढहाने से जनित स्त्री की दुर्बलता हो या स्त्री को कुत्सितता की ओर ढकेल देने वाली परिस्थितयाँ अतीत ने स्त्री जाति को पुरुष से अबला बताने में कोई कसर नहीं छोड़ी। स्त्री के राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक अभावों का हवाला देते हुए महादेवी जी ने स्त्री की शारीरिक और मानसिक मुक्ति की ओर ध्यानाकर्षित करने का प्रयास किया है। वे कहती हैं कि ''उसके जीवन का प्रथम लक्ष्य पत्नीत्व और अंतिम मातृत्व समझा जाता रहा'' है।

उनके अनुसार अपनी ही स्वायत्ता पिता, पति, पुत्र जैसे समाज के कई लोगों के हवाले करने वाली स्त्री को प्रत्येक अवस्था में प्राण धारण करने के लिए पत्नी बनना जैसे नियति हो गई है। विवाह को एक व्यापार और पुरुषों के मनोविनोद का साधन बताने वाली महादेवी जी आज के समाज के साथ–साथ पुरुष और स्वयं स्त्री के समक्ष भी कई ऐसे प्रश्न उठाती हैं जिनका समाधान कर लेने पर वे न केवल एक बेहतर समाज के निर्माण में कारगर हो सकते हैं बल्कि स्त्री को एक व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करने में भी सहायक होंगे। उनके अनुसार स्त्री के विकास की चरम सीमा मातृत्व में हो सकती है परंतु वे यह भी कहती हैं कि यह कर्तव्य स्त्री को अपनी मानसिक और शारीरिक शक्तियों को तौल कर स्वेच्छा से स्वीकार करना चाहिए, परवश होकर नहीं करना चाहिए।

स्त्री के विकास के उपाय बताते हुए वे लिखती हैं कि यदि उसके जन्म के साथ ही उसके विवाह की चिंता करने के बजाय उसकी रुचि के अनुसार कला व शिक्षा का उद्योग किया जाए तो वे स्वाबलंबी हो जाएँगी तत्पश्चात् अपनी शिक्षा और शक्ति को समझकर यदि वे अपने जीवनसाथी का चुनाव कर विवाह करती हैं तो उनका ऐसा विवाह उनके लिए तीर्थ होगा। ऐसे में ही वे अपनी संकीर्णता मिटा सकेंगी, व्यक्तिगत स्वार्थों को बहा सकेंगी और अपने को उज्जवल बना पाएँगी।

## हमारी समस्याएँ

आजादी के पहले लिखे इस निबंध के पहले भाग में महादेवी जी ने शिक्षा की परिभाषा देते हुए उसकी आवश्यकता और स्वतंत्रता का महत्व बताया है जिसमें वे अपनी संकीर्ण और दृष्टिकोण को विस्तृत व व्यापक बनाने वाले को शिक्षित मानती हैं। महादेवी जी ने इस निबंध में शिक्षा के कई सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों पर प्रकाश डाला है जिसके क्रम में वे लिखती हैं कि ''सारा ज्ञान, सारी शिक्षा, अपने अविकृत तथा प्राकृतिक रूप में मानव को, जीवन की अनेकरूपता में ऐक्य ढूँढ लेने की क्षमता प्रदान करती है, दूसरों की दुर्बलता में उदार और अपनी शक्ति में नम्र रहने का आदेश देती है तथा मनुष्य के व्यक्तित्व की संकीर्ण सीमा तोड़ उसे ऐसा सर्वमय बना देती है जिसमें उसकी बुद्धि, उसका चिंतन, उसके कार्य उसके होते हुए भी सबके हो जाते हैं और उसके जीवन का स्तर दूसरों के जीवन–स्तरों से सामंजस्य स्थापित कर संगीत की सृष्टि करता है।''

वे मानती हैं कि मनुष्य बनने के लिए, जीवन का अर्थ और उपयोग समझने के लिए शिक्षा की आवश्यकता होनी चाहिए न कि धर्म, अर्थ काम या मोक्ष पर आधारित पारंपरिक परिपाटी के अनुपालन के लिए। महादेवी शिक्षा के क्षेत्र में मातृशक्ति का आह्वान करते हुए लिखती हैं कि अनाथालयों के बालक–बालिकाओं को उचित शिक्षा के प्रबंध द्वारा शिक्षित करते हुए बहुत बड़ा सहयोग दिया जा सकता है। वे कहती हैं कि ''यदि हममें से कुछ स्वयं माता बनने का स्वप्न देखना छोड़कर इन्हीं की माता बनने का, इन्हें योग्य बनाने का व्रत ग्रहण कर लें, तो भविश्य में किसी दिन इनके द्वारा नवीन रूप–रेखा पाकर देश, समाज सब आज की नारी–शक्ति पर श्रद्धांजलि चढ़ाने में अपना गौरव समझेंगे, इनके त्याग के इतिहास, इतिहास को अमरता देंगे।

वे पुरुष–समाज के द्वारा प्राप्त शिक्षा को एक दिशा देने के लिए नारी को प्रेरित करते हुए उन्हें मार्गदर्शन देते हुए कहती हैं कि ''व्यक्ति जिस गोद में जीवित रहने की शक्ति पाता है, अनेक तूफ़ानों को झेलने की सहिष्णुता ओर दृढ़ता का पाठ पढ़ता है, उसका अभाव उन शक्तियों का, गुणों का अभाव है जिनकी उसे प्रति पग पर आवश्यकता पड़ेगी।''

अकर्मण्यता और स्वार्थपरता से तत्कालीन होती षिक्षा की दुर्दशा को देखते हुए वे महिला–शिक्षा पर जोर देती हुई महिला शिक्षा द्वारा समाज में होने वाले परिवर्तन के प्रति संभावनाओं को तलाशते हुए बताती हैं कि जो परिस्थितिया दूर होने के कारण उपेक्षणीय मानी जाती हैं वे निकट आने पर सबके लिए असह्य और सबके लिए दुर्बल हो उठती हैं। महादेवी व्याख्या करते हुए लिखती हैं कि प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक गुण के साथ सीमा है, जिसका अतिक्रमण उस वस्तु के उस गुण के उपयोग को न्यून या विकृत कर देता है।''

निबंध का द्वितीय भाग सामाजिकता के परिप्रेक्ष्य में स्त्री–पुरुष संबंधों के अंतर्संबंध की पड़ताल करता हुआ लिखा गया है। स्त्री के बारे में वे लिखती हैं कि उसे केवल पत्नी के रूप में नहीं बल्कि अन्य सभी रूपों में समझना आवश्यक भी है और उचित भी। उनके अनुसार एक नारी ही नारीत्व की सजग चेतना से समाज के वातावरण में अधिकाधिक स्निग्धता और पुरुष भी इसी से अधिकाधिक शक्ति ला सकता है। वे मानती हैं कि ''हमें ऐसे युवक चाहिए जिनमें ज्वराक्रांत की न बुझने वाली, जल के स्वाद को विकृत कर देने वाली प्यास ने हो, जो रोग का चिन्ह–मात्र है, वरन् स्वास्थ्य की आवश्यकता, साधन तथा स्थान का ज्ञान हो, जो विकास का कारण है। स्त्री–पुरुष की मानसिक स्थिति में भिन्नता के अनेक कारण बताते हुए वे कहती हैं कि

''अस्वाभाविक वातावरण में बालक–बालिका को पल कर बड़ा होना पड़ता है और उनके अबोध मन में एक–दूसरे को जानने के कुतूहल के साथ–साथ जानने का अनौचित्य भी समाया रहता है। गृह और समाज दोनों उन्हें इतनी दूर रखना चाहते हैं कि जितनी दूर रह कर वे एक–दूसरे को विचित्र स्वप्नलोक की वस्तु समझने लगें। एक संकीर्ण सीमा में निकट रहते हुए भी पिता–पुत्री, भाई–बहिन अपने चारों ओर मिथ्या संकोच की एक ऐसी दृढ़ भित्ति खड़ी कर लेते हैं जिसे पार कर दूसरे के निकट पहुँच पाना, उसकी विभिन्नतामयी प्रकृति को समझ लेना असंभव हो जाता है; यही नहीं, समाझने का प्रयास अनुचित और उस दूरी को और अधिक बढ़ाने की इच्छा स्तुत्य मानी जाने लगी है।''एक षिषु से लेकर बाल्यावस्था, तरुणाई, युवावस्था, प्रौढ़पन से लेकर बुर्जुगता तक स्त्री–पुरुष के संबंधों को एक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखते हुए उनके व्यवहार से समाज में होने वाले स्थायी परिवर्तनों को महादेवी जी ने विस्तार से निबंध के इस भाग में समझाया है।

## समाज और व्यक्ति

इसमें महादेवी जी ने समाज की परिभाषा देते हुए समाज की आवश्यकता और उसके ऐतिहासिक–क्रमिक विकास की सरणी प्रस्तुत की है। जिसकी मानसिक यात्रा के दौरान उन्होंने समूह और संस्था में भेदकारी तत्व बताते हुए नैतिकता के परिप्रेक्ष्य में मानव समुदाय को एक सामाजिक संस्था की संज्ञा देते हुए बताया है। कि ''लौकिक सुविधा की नींव पर, नैतिक उपकरणों से, धार्मिकता का रंग देकर हमारी सामाजिकता का प्रासाद निर्मित हो सका। जिस क्रम से समाज के नियम अधिकाधिक परिष्कृत होते गए और पूर्ण विकसित तथा व्यवस्थित

समाज में वे केवल व्यावहारिक सुविधा के साधनमात्र न रह कर सदस्यों के नैतिक तथा धार्मिक विकास के साधन भी हो गये।''

अपने इस निबंध में महादेवी जी ने व्यक्ति और समाज के अन्योन्याश्रित संबंध की सापेक्षिता पर सूक्ष्म विचार मंथन करते हुए लिखती हैं कि ''समाज यदि मनुष्यों का समूह मात्र नहीं है तो मनुष्य भी केवल क्रियाओं का समूह नहीं। दोनों के पीछे सामूहिक और व्यक्तिगत इच्छा, हर्ष और दुःखों की प्रेरणा है। जीवन, केवल इच्छाओं या भावनाओं से उत्पन्न आचरणों को सेना के समान कवायद सिखा देने में ही सफल नहीं हो जाता, वरन् उन इच्छाओं के उद्‌गमों को खोजकर उनसे मनुष्यता की मरुस्थली को आर्द्र करके पूर्णता को प्राप्त होता है। इस दृष्टि से समाज की सत्ता दो रूपों में विभक्त हो जाती है। एक के द्वारा वह अपने सदस्यों के व्यवहार और आचरणों पर शासन करता है और दूसरे द्वारा वह उनकी स्वाभाविक प्रेरणाओं का मूल्य आँक कर उनके मानसिक विकास के उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करता रहता है।''

आगे अर्थ विभाजन और स्त्री–पुरुष संबंधों रूपी दो आधार शिलाओं के महत्व और समाज के विकास में उनकी भूमिका की व्याख्या करते हुए महादेवी जी ने स्त्री के महत्व को प्रतिपादित करने का सफल प्रयत्न किया है। महादेवी जी ने अर्थ की अनिवार्य आवश्यकता जिस प्रकार प्रतिपादित की है वह सर्वथा विलग होते हुए भी कार्लमार्क्स के 'इतिहास की आर्थिक व्याख्या' के उन आयामों को स्पर्ष करता है जो समाज के लिए महत्वपूर्ण है। महादेवी जी के अनुसार स्त्री–पुरुष संबंध अर्थ जितना ही महत्वपूर्ण है क्योंकि यह समाज को बाँधने की क्षमता रखता है। इस समाज के विकास की धुरी का केन्द्र भी महादेवी स्त्री को ही मानती हैं इसीलिए वे लिखती हैं कि

''नैतिक दृष्टि से समाजवृक्ष के सघनमूल का पहला अंकुर स्त्री, पुरुष और उसकी संतान में पनपा, इस निर्मूल सिद्ध कर देना संभव नहीं हो सकेगा। यदि यह ध्यान से देखें तो ज्ञात होगा कि बहुत काल से स्त्री की स्थिति समाज का विकास नापने के लिए मापदण्ड रही है।'' महादेवी जी ने इस निबंध के उत्तरार्द्ध भाग में वर्णव्यवस्था से जाति व्यवस्था की ओर अग्रसर समाज में स्त्री की निरंतर परिवर्तनशील स्थिति और वर्तमान अवस्था तक को रेखांकित करने का प्रयास करते हुए समाज पर पाश्चात्य प्रभाव के संकेत देते हुए निबंध का समापन प्रस्तुत किया है।

## जीने की कला

वे स्त्री जाति के परिप्रेक्ष्य में इसी बात को लिखते हुए कहती हैं कि ''जीवन को पूर्ण से पूर्ण रूप तक विकसित कर देने योग्य सिद्धांत उसके पास है, परंतु न परिस्थिति विशेष में उचित उपयोग ही वह जानती है और न उनका अर्थ ही समझती है, अतः जीवन और सिद्धांत दोनों ही भार होकर उसे वैसे ही संज्ञाहीन किये दे रहे हैं, जैसे ग्रीष्म की कड़ी धूप में शीतकाल के भारी और गर्म वस्त्र पहिने हुए पथिक को उसका परिधान। जीवन को अपने साँचे में ढालकर सुंदर और सुडौल बनाने वाले सिद्धांतों ने ही अपने विपरीत उपयोग से भार बनकर उसके सुकुमार जीवन को उसी प्रकार कुरूप और वामन बना डाला है जिस प्रकार हाथ का सुंदर कंकण चरण में पहना जाने पर उसकी वृद्धि को रोककर उसे कुरूप बना देता है।''

महादेवी जी का मानना है कि स्त्री को प्रकृति ने जीने की कला प्रदान की किंतु पुरुश ने स्त्री को उस कला से विस्मृत बना दिया। अतः आवश्यकता है स्त्री को उसकी इस कला का अहसास कराने की जिसके लिए उसकी अंतर्मुखी तथा बहिर्मुखी प्रवृत्तियों का पूर्ण विकास कर उसे सुविधाएँ प्रदान करनी होंगी क्योंकि जब तक हमारे बाहर के और अंदर के विकास सापेक्ष नहीं हो जाते तब तक ही जीना नहीं जान सकते। अस्तु महादेवी जी का गद्य उनके काव्य की ही तरह विस्तृत और व्यापक धरातल पर अवस्थित होते हुए विविधतापूर्ण एवं सारगर्भिता से परिपूर्ण है जिसकी भावगत एवं शिल्पगत विशेषताओं का अध्ययन इस शोधप्रबंध के चतुर्थ अध्याय में किया गया है।

## निष्कर्ष

समाजिक व्याख्या करते हुए एक व्यक्ति के अधिकारों और कर्तव्यों के संतुलन और समाज के प्रति व्यक्ति की उपादेयता की बात की गई है। वे स्त्री एवं पुरुष की सामाजिक स्थिति की बराबरी की वकालत करते हुए कहती हैं कि ''यदि पुरुश धनोपार्जन कर अपने कर्तव्य का पालन करता हुआ समाज तथा देश का आवश्यक और उपयोगी अंग समझा जाता है, राजनीतिक तथा सामाजिक अधिकारों का यथेष्ट उपभोग कर सकता है तो स्त्री गृह में भविष्य के लिए अनिवार्य संतान का पालन–पोषण कर अपने गुरु कर्तव्य का भार वहन करती हुई इन सब अधिकारों से अपरिचित तथा वंचित क्यों रखी जाती है? संसार के और उसके बीच में ऐसी काली अभेद्य यवनिका क्यों डाल दी जाती है जिसके कारण अपने गृह की संकुचित सीमा के अतिरिक्त और किसी वस्तु से उसका परिचय हो सकता असंभव है?''

उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग के साथ–साथ गृहिणी, श्रमजीवी तथा अधिकार संपन्न नारियों के उत्तरदायित्वों एवं अधिकारों को एक स्वायत्ता के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का दुरूह कार्य महादेवी ने अपने इस निबंध में सहज बनाते हुए किया है।

## संदर्भ


1. श्रृंखला की कड़ियाँ–1, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक–ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
2. युद्ध और नारी, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक– ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
3. नारीत्व का अभिशाप, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक–ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
4. आधुनिक नारी–1, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक–ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
5. घर और बाहर–1, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक–ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
6. हिन्दु स्त्री का पत्नीत्व, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक–ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
7. हमारी समस्याएँ, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक–ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
8. समाज और व्यक्ति, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक–ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
9. महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक–ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
10. जीने की कला, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक–ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
11. श्रृंखला की कड़ियाँ–1, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक–ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.